न्यायमूर्ति एस. पी. गोयल और न्यायमूर्ति आई. एस. तिवाना के समक्ष

धर्मपाल और अन्य,-याचिकाकर्ता

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य,-प्रतिवादी

1986 की सिविल रिट याचिका संख्या 4000

27 नवंबर 1987

अनुबंध अधिनियम (1872 का IX) - धारा 5 - नियुक्ति का प्रस्ताव - इसकी स्वीकृति से पहले प्रस्ताव को वापस लेना - ऐसी वापसी का प्रभाव।

यह अभिनिर्णीत *किया गया है* कि किसी प्रस्ताव या प्रस्ताव को प्रस्तावक के विरुद्ध उसकी स्वीकृति की सूचना पूरी होने से पहले किसी भी समय रद्द किया जा सकता है। एक बार जब याचिकाकर्ताओं के पक्ष में जारी नियुक्ति का प्रस्ताव उनके संचार या उनके द्वारा वास्तविक स्वीकृति से पहले रद्द या वापस ले लिया गया था, तो नियुक्ति के उक्त प्रस्तावों के आधार पर उनके पक्ष में कोई अधिकार अस्तित्व में नहीं आया।

(पैरा 4)

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत याचिका निम्नानुसार प्रार्थना करती है:-

(i) कृपया मामले के रिकॉर्ड मंगाए जाएं।

(ii) रिकार्ड का अध्ययन करने और पक्षों के वकील की बात सुनने के बाद माननीय न्यायालय निम्नलिखित राहत देने की कृपा करेगा:-

(ए) नियुक्ति आदेशों को रद्द करने के आदेश को रद्द करने के लिए एक उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करें (अनुलग्नक पी-4 की प्रति); और

(डी) प्रतिवादियों को याचिकाकर्ताओं को पहले ही दिए गए नियुक्ति आदेशों को प्रभावी करने का निर्देश देना (अनुलग्नक पी-1, पी-2 और पी-3)।

(iii) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित और उचित समझे, जारी किया जा सकता है।

(iv) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर माननीय न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ताओं को कोई अन्य राहत भी दी जा सकती है।

(v) इस याचिका के साथ दायर अनुलग्नकों की प्रमाणित प्रतियां दाखिल करने की आवश्यकता को कृपया समाप्त किया जाए।

(vi) मामले की तात्कालिकता को देखते हुए कृपया उत्तरदाताओं को इस याचिका की अग्रिम सूचना देने की आवश्यकता को समाप्त किया जाए।

(vii) इस याचिका की लागत कृपया याचिकाकर्ताओं के पक्ष में और उत्तरदाताओं के खिलाफ दी जाए क्योंकि उन्हें उनके हाथों से बचने योग्य खर्च में डाल दिया गया है।

आगे प्रार्थना की गई है कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी नंबर 3 को उन पदों को भरने से रोका जा सकता है जो विज्ञापित किए गए थे और जिनके लिए मई 1986 के महीने में चयन किया गया था, जब तक कि पहले से ही चयनित व्यक्तियों को नहीं चुना गया हो। उन पदों पर नियुक्तियां की जाती हैं और यह सूची समाप्त होने के बाद ही आगे की भर्ती की जा सकती है। और प्रतिवादी संख्या 3 को याचिकाकर्ताओं को जारी किए गए नियुक्ति आदेशों को प्रभावी करने और/या नियुक्ति आदेशों को रद्द करने के आदेश के संचालन पर रोक लगाने का निर्देश दिया।

कोई अन्य अंतरिम राहत जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित और उपयुक्त समझे, कृपया जारी किया जा सकता है।

याचिकाकर्ताओं के लिए जे.के. सिब्बल, अधिवक्ता और आर.के. हांडा, अधिवक्ता।

प्रतिवादियों की ओर से अतिरिक्त ए.जी. हरियाणा बी.एस. मलिक, जे.एल. गुप्ता, वरिष्ठ अधिवक्ता और आर.एस. चाहर, अधिवक्ता।

निर्णय

न्यायमूर्ति आई. एस. तिवाना,

(1) "क्या नियुक्ति का प्रस्ताव जो किसी व्यक्ति द्वारा स्वीकार किए जाने से पहले वापस ले लिया जाता है, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत परमादेश की रिट के माध्यम से लागू करने योग्य अधिकार को जन्म देता है भारत का" एक प्रतिष्ठित कानूनी प्रश्न है जो 11 याचिकाओं (सीडब्ल्यूपी संख्या 4000/86, 3466/86, 4472/86, 6613/86, 5987/86, 764/87, 6611/86, 6612/86, 5434/86, 604/87, और 6906/86)) के इस सेट में सामने आता है। यह निम्नलिखित प्रकार से उत्पन्न होता है:-

11 अप्रैल, 1986 को "नेशनल हेराल्ड" में प्रकाशित एक विज्ञापन के जवाब में, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा विभिन्न रैंकों, जैसे प्रबंधक, फील्ड अधिकारी, जूनियर अकाउंटेंट, भूमि मूल्यांकन अधिकारी, क्लर्क और चपरासी की 320 रिक्तियों को भरने के लिए , यानी, हरियाणा राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लिमिटेड, चंडीगढ़, याचिकाकर्ताओं ने कई अन्य लोगों के साथ, (प्रतिवादी के रुख के अनुसार लगभग 20,000 व्यक्तियों) ने इनमें से कुछ पदों के खिलाफ अपने चयन और नियुक्ति के लिए आवेदन किया था। इसके बाद हुए साक्षात्कारों के परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ताओं को न केवल आवेदित पदों के लिए चुना गया, बल्कि बैंक के प्रबंध निदेशक द्वारा उनके पक्ष में नियुक्ति पत्र भी जारी किए गए, जो माना जाता है कि नियुक्ति प्राधिकारी थे। उत्तरदाताओं का यह स्वीकार किया गया मामला है कि इन याचिकाओं में कुल 50 याचिकाकर्ताओं में से दो उनके पक्ष में जारी नियुक्ति आदेशों के जवाब में शामिल हुए थे और उनमें से दो पहले से ही तदर्थ नियुक्तियों के रूप में बैंक में सेवा कर रहे थे। अन्य लोग अपनी संबंधित नौकरियों में शामिल नहीं हो सके क्योंकि उन्हें जारी किए गए नियुक्ति प्रस्ताव उनके द्वारा स्वीकार किए जाने से पहले ही रद्द कर दिए गए थे। फिलहाल हमें सिर्फ इन याचिकाकर्ताओं की चिंता है. उन लोगों के संबंध में जो या तो अपने पक्ष में जारी किए गए नियुक्ति पत्रों के जवाब में अपनी नौकरी में शामिल हुए थे या पहले से ही तदर्थ नियुक्तियों के रूप में बैंक की सेवा में थे, और इस प्रकार, उन्हें नए जारी किए गए नियुक्ति आदेशों के तहत शामिल किया गया माना जाता है, बैंक का रुख यह है कि उनकी नियुक्तियों को वापस लेने

के आदेश नियुक्ति पत्र के तहत बैंक के अधिकारों के अधीन वापस लिये जायेंगे। बैंक के इस रुख के आलोक में, हम उन याचिकाकर्ताओं की याचिकाओं को खारिज करते हैं जो या तो उपरोक्त चयन के परिणामस्वरूप उनके पक्ष में जारी नियुक्ति पत्र के जवाब में बैंक की सेवा में शामिल हुए थे या पहले से ही सेवारत थे। इस प्रकार, बैंक द्वारा उनके पक्ष में जारी किए गए नियुक्ति पत्रों को निष्फल मानकर सेवा में शामिल होना मान लिया गया है।

(2) इन याचिकाओं में जो उजागर किया गया है वह यह है कि याचिकाकर्ताओं के पक्ष में जारी किए गए नियुक्ति पत्र 6 जून 1986 को बिना किसी कारण बताए अचानक रद्द कर दिए गए या वापस ले लिए गए। उनके अनुसार, यह न केवल मनमाना था, बल्कि कानूनी दुर्भावना का परिणाम था, क्योंकि श्री भजन लाई की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद ने 4 जून, 1986 को इस्तीफा दे दिया था, और श्री बंसी लाई की अध्यक्षता में एक नई सरकार कार्यालय में आई थी। . सरकार में इस बदलाव के कारण ही याचिकाकर्ताओं को भेजे गए नियुक्ति के प्रस्ताव सरकार के कहने पर अपने लोगों को समायोजित करने के लिए वापस ले लिए गए। हालाँकि, इस रुख का सरकार के साथ-साथ बैंक, यानी प्रतिवादी नंबर 3 ने दृढ़ता से खंडन किया है। सरकार का रुख दोहरा है। सबसे पहले, हालांकि नए मंत्रिमंडल ने 5 जून, 1986 को शपथ ली थी, फिर भी श्री पियारा सिंह दोनों सरकारों में सहकारिता विभाग के प्रभारी मंत्री बने रहे, अर्थात् श्री भजन लाई की अध्यक्षता वाली सरकार और श्री भजन लाई की अध्यक्षता वाली नई कैबिनेट में श्री बंसी लाई. ऐसे में, जहां तक सहकारिता विभाग का सवाल है, सरकार में कोई बदलाव नहीं हुआ है। दूसरे, रजिस्ट्रार, सहकारी समितियां, हरियाणा ने 1 मई, 1986 को वित्त विभाग से हरियाणा राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक, यानी प्रतिवादी संख्या 3 को एक संचार के आलोक में निर्देश (अनुलग्नक आरएल) जारी किए थे। रजिस्ट्रार ने 2 जून, 1986 को लिखे अपने पत्र में पीई और आईसी (एफडी) की सहमति के बिना संबंधित पदों को न भरने का निर्देश देते हुए सहकारी विभाग में सरकार से इस मामले को उठाने का भी अनुरोध किया। वित्त विभाग को इन रिक्तियों को भरने के लिए सहमति देने हेतु। जब मामला अभी भी लंबित था, तब उनके ध्यान में आया कि बैंक नियुक्तियाँ करने के मामले में आगे बढ़ रहा था और उन्होंने 6 जून,

1986 को एक पत्र जारी किया, जिसमें बैंक के प्रबंध निदेशक को निर्देश दिया गया कि "पद न भरें।" 11 अप्रैल 1986 को नेशनल हेराल्ड में विज्ञापन दिया गया। उनके अनुसार इन निर्देशों का सरकार में बदलाव से कोई संबंध नहीं है। दरअसल, रजिस्ट्रार ने 25 मई 1986 को फाइल पर उपरोक्त आदेश पारित किया था।

बैंक का रुख इस प्रकार है:

2 मई, 1986 को वर्तमान प्रबंध निदेशक के पूर्ववर्ती ने एक आदेश पारित कर कहा कि विभिन्न कारणों से इतनी बड़ी संख्या में अभ्यर्थियों (लगभग 20,000) का साक्षात्कार आयोजित करना उनके लिए संभव नहीं था। इसलिए, उन्होंने अपने लिए काम करने के लिए राज्य सरकार के प्रथम श्रेणी अधिकारी श्री जे.एस. बिश्नोई को नियुक्त किया, जो बैंक में प्रतिनियुक्ति पर थे और सहायक सचिवों के एक पद पर कार्यरत थे। उन्होंने श्री बिश्नोई को इस उद्देश्य के लिए "बैंक के प्रबंधक के पद से नीचे के अन्य अधिकारियों की सेवाएं लेने" का विकल्प भी दिया। श्री बिश्नोई ने नियुक्ति प्राधिकारी, यानी, प्रबंध निदेशक के लिए काम किया, और कहा जाता है कि उन्होंने एक निर्धारित प्रोफार्मा के रूप में विभिन्न उम्मीदवारों के चयन के संबंध में अपनी राय से अवगत कराया। राय का यह संचार कुछ अन्य अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा लिए गए साक्षात्कारों के परिणाम पर भी आधारित था। अभिलेखों से आगे जो उपलब्ध हुआ वह यह था कि- (i) किसी के द्वारा कोई प्रमाणित योग्यता सूची तैयार नहीं की गई थी। वास्तव में, श्री बिश्नोई ने अपने पत्रों के साथ संलग्न किसी भी सूची पर हस्ताक्षर भी नहीं किये थे; (ii) साक्षात्कार कार्यवाही का कोई ठोस रिकॉर्ड तैयार नहीं किया गया था। साक्षात्कार आयोजित करने वाले व्यक्तिगत अधिकारियों द्वारा जारी किए गए कुछ प्रमाणपत्रों में कहा गया है, "उन्होंने/मैंने श्री बिश्नोई को अपने विचार/टिप्पणियाँ/मूल्यांकन और उम्मीदवारों के प्रदर्शन के बारे में बताया है": (iii)) ऐसा प्रतीत हुआ कि साक्षात्कार प्रबंध निदेशक द्वारा अधिकृत व्यक्ति, यानी श्री बिश्नोई द्वारा आयोजित नहीं किया गया था; (iv) यह कहीं भी उपलब्ध नहीं था कि साक्षात्कार आयोजित करने वाले विभिन्न व्यक्तियों द्वारा उनके सामने आने वाले उम्मीदवारों की योग्यता या परस्पर वरिष्ठता निर्धारित करने के लिए किन मानदंडों का पालन किया गया था; (v) एक नमूना जांच से पता चला कि कुछ ऐसे व्यक्तियों का चयन किया गया था जिन्होंने पदों के

लिए आवेदन भी नहीं किया था (उनके नाम लिखित बयान के पैरा 11 में उल्लिखित हैं); (vi) कुछ चयनित उम्मीदवारों ने निर्धारित समय यानी विज्ञापन में निर्धारित अंतिम तिथि के भीतर अपने आवेदन जमा नहीं किए थे (विवरण लिखित विवरण के पैरा 12 में दिया गया है); (vii) चयनित उम्मीदवारों में से कुछ ने अपने आवेदन विज्ञापन की तारीख से बहुत पहले ही जमा कर दिए थे (उदाहरण लिखित बयान के पैरा 13 में उल्लिखित हैं); (viii) जो आवेदन अपेक्षित राशि के पोस्टल ऑर्डर संलग्न करके विधिवत पूरे नहीं किए गए थे और जिन्हें सामान्य रूप से अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए था, उन्हें स्वीकार कर लिया गया और उम्मीदवारों का साक्षात्कार लिया गया और उनका चयन किया गया (उदाहरण लिखित बयान के पैरा 14 में दिए गए हैं), (ix) कुछ चयनित उम्मीदवार उस पद के लिए निर्धारित न्यूनतम योग्यता भी पूरी नहीं करते (लिखित विवरण के पैरा 15 में विवरण दिया गया है)। इन सबसे ऊपर, रिकॉर्ड की जांच से यह भी पता चला कि कुछ स्थानों पर एक विशेष दिन में 1,000 से अधिक उम्मीदवारों का साक्षात्कार लिया गया था। इन सभी तथ्यों के आलोक में प्रबंध निदेशक को लगा कि कथित साक्षात्कार केवल एक दिखावा था, और इसलिए, जारी किए गए चयन या नियुक्ति के आदेश कानूनी रूप से वैध या सही नहीं थे। इसलिए, उन्होंने निर्णय लिया कि- (i) उपरोक्त चयनों के आलोक में जारी किए गए नियुक्ति आदेश वापस ले लिए जाएं; (ii) पदों को पुनः विज्ञापित किया जाए; (iii) चयन नए सिरे से किया जाए; (iv) जिन व्यक्तियों ने 11 अप्रैल, 1986 के विज्ञापन के जवाब में आवेदन किया था, उन पर विचार किया जा सकता है, और उन्हें नए आवेदन जमा करने की आवश्यकता के बिना विभिन्न पदों के लिए दोबारा आवेदन करने की आवश्यकता नहीं है। प्रबंध निदेशक के इस निर्णय को बाद में बैंक के प्रशासक मंडल द्वारा 6 नवंबर, 1986 को शाम 5.00 बजे आयोजित बैठक में अनुमोदित किया गया।

(3) यहां यह ध्यान देने योग्य है कि प्रारंभिक चरणों में जब ये मामले इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिए आए, तो उत्तरदाताओं की ओर से यह कहा गया कि जैसा कि बैंक केवल सहकारी समिति अधिनियम के तहत पंजीकृत एक सहकारी समिति थी, और एक 'राज्य' नहीं थी, यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के मद्देनजर इस न्यायालय के रिट

क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी नहीं थी। विद्वान न्यायाधीश के समक्ष याचिकाकर्ताओं का रुख यह था कि सोसायटी, यानी बैंक को पूरी तरह से राज्य सरकार ने अपने कब्जे में ले लिया है, और सरकार का एक अधिकारी प्रबंध निदेशक के रूप में इसके मामलों को चला रहा है, इसलिए, की ओर से आपत्ति उठाई गई। उत्तरदाता पूरी तरह से योग्यता से रहित थे। जैसा कि विद्वान न्यायाधीश ने महसूस किया कि उठाया गया विवाद कुछ परिणाम देने वाला था और न केवल इन याचिकाओं के फैसले को प्रभावित करने की संभावना थी, बल्कि कई अन्य, जो विद्वान न्यायाधीश के अनुसार पाइपलाइन में थे, उन्होंने इन याचिकाओं को उनके निपटारे के लिए एक बड़ी बेंच को संदर्भित करना उचित समझा। मामला इस तरह हमारे सामने है। चूंकि कुछ समय तक पक्षों के विद्वान वकीलों को सुनने के बाद हमने यह राय बनाई कि यदि उपरोक्त प्रश्न का उत्तर, जैसा कि इस निर्णय के शुरुआती भाग में देखा गया है, याचिकाकर्ताओं के खिलाफ है, तो विवाद जैसा कि बताया गया है विद्वान एकल न्यायाधीश को इसमें जाने की आवश्यकता नहीं है। हमने इस निर्णय को केवल उस प्रश्न तक ही सीमित रखने का निर्णय लिया है।

(4) *रोशन लाई टंडन बनाम भारत संघ और अन्य*[1] मामले में सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने यह दृढ़ता से फैसला सुनाया है कि प्रत्येक सरकारी सेवा की उत्पत्ति संविदात्मक है, और प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति का एक तत्व ऐसे प्रत्येक में शामिल है। मामला। किसी पद पर नियुक्ति के बाद ही सरकारी कर्मचारी को एक दर्जा प्राप्त होता है और उसके अधिकार और दायित्व अब दोनों पक्षों, यानी नियोक्ता और कर्मचारी की सहमति से निर्धारित नहीं होते हैं, बल्कि कानून या वैधानिक नियमों द्वारा निर्धारित होते हैं। फंसाया हुआ. इसके बाद ही सरकार मामले को एकतरफा निपटा सकती है। हमारे विचार से, कानून का यह कथन हर दूसरे रोजगार पर लागू होता है, जिसमें वह रोजगार भी शामिल है जहां एक सहकारी समिति नियोक्ता है, जैसा कि मौजूदा मामले में है। इसके अलावा, अनुबंध अधिनियम की धारा 5 के आलोक में यह अच्छी तरह से तय है कि किसी प्रस्ताव या प्रस्ताव को प्रस्तावक के खिलाफ उसकी स्वीकृति की सूचना पूरी होने से पहले किसी भी समय रद्द किया

[1] (1967) एस एल आर 832

जा सकता है। कानून के इन स्थापित प्रस्तावों के सामने हम इस बात से संतुष्ट हैं कि एक बार याचिकाकर्ताओं के पक्ष में जारी किए गए नियुक्ति प्रस्तावों को उनके संचार या उनके द्वारा वास्तविक स्वीकृति से पहले रद्द या वापस ले लिया गया था, इसके आधार पर उनके पक्ष में कोई अधिकार अस्तित्व में नहीं आया। कहा नियुक्ति के प्रस्ताव. किसी भी याचिकाकर्ता का मामला यह नहीं है कि उसके पक्ष में जारी नियुक्ति का प्रस्ताव अभी भी था या विद्यमान था और उसे पद पर शामिल होने की अनुमति नहीं दी गई थी। हमारा उपर्युक्त निष्कर्ष अंतिम न्यायालय के दो निर्णयों, अर्थात् *हरियाणा राज्य बनाम सुभाष चंदर मारवाहा और अन्य*[2] और *जतिंदर कुमार और अन्य बनाम पंजाब राज्य*[3] और अन्य द्वारा अच्छी तरह से समर्थित प्रतीत होता है। पहला पंजाब सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) सेवा नियमों के तहत एक मामला था। राज्य सरकार ने इस आशय का एक विज्ञापन प्रकाशित किया था कि हरियाणा लोक सेवा आयोग, हरियाणा सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) में 15 रिक्तियों के लिए उम्मीदवारों की भर्ती के लिए एक परीक्षा आयोजित करेगा। उस परीक्षा में चालीस अभ्यर्थियों ने 45 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त किये। हालाँकि, राज्य सरकार ने पहले सात उम्मीदवारों को ही सेवा में नियुक्त किया। उस संख्या से अधिक नियुक्तियां न करने का कारण यह था कि उच्च न्यायालय ने पहले राज्य सरकार को सूचित किया था कि परीक्षा में 55 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों को योग्यता के उच्च मानकों को बनाए रखने के हित में अधीनस्थ न्यायाधीश के रूप में नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। न्यायिक सेवा के मामलों में. सूची के क्रमांक 8, 9 और 13 के अभ्यर्थी, जिन्हें विज्ञापित रिक्तियों के आलोक में नियुक्त होने की उम्मीद थी, ने राज्य सरकार की उक्त कार्रवाई को इस आधार पर चुनौती दी कि वह केवल 7 के अर्थ में चयन और चयन का सहारा नहीं ले सकती। 40 में से अभ्यर्थियों को नियुक्त कर दिया गया था और चूंकि वे भी निर्धारित मानक पर खरे उतरे थे इसलिए अधिसूचित रिक्तियों की संख्या को देखते हुए वे सेवा में नियुक्त होने के हकदार थे। इसके विपरीत, सरकार का रुख यह था कि नियम उन्हें सभी रिक्तियों को भरने के लिए बाध्य नहीं करते हैं। न्यायपालिका में दक्षता के उच्च मानकों को बनाए रखने के

[2] 1973 (2) एस एल आर 137

[3] ए आई आर 1984 एस सी 1850

हित में पहले सात उम्मीदवारों की नियुक्ति करना उनके लिए खुला था। याचिकाकर्ताओं के रुख को नकारते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि "यह विवादित नहीं है कि किसी उम्मीदवार का नाम सूची में दर्ज होने मात्र से उसे नियुक्ति का अधिकार नहीं मिल जाता है। यह विज्ञापन कि 15 रिक्तियां भरी जानी हैं, उसे नियुक्ति का अधिकार भी नहीं देता..... कोई यह देखने में विफल रहता है कि रिक्तियों का अस्तित्व किसी उम्मीदवार को नियुक्ति के लिए चुने जाने का कानूनी अधिकार कैसे देता है। इन टिप्पणियों के सामने, याचिकाकर्ताओं को यह कहते हुए उचित रूप से नहीं सुना जा सकता है कि केवल नियुक्ति के आदेश जारी करने से, जो नियुक्ति के प्रस्तावों के अलावा कुछ नहीं थे, उन्हें कोई अधिकार प्रदान किया गया है, भले ही उनके द्वारा इसे स्वीकार करने से पहले ही इसे वापस ले लिया गया हो। हमारे विचार से, नियुक्ति आदेश जारी न करना और नियुक्ति का प्रस्ताव जारी करना, जिसे वह जिस व्यक्ति को दिया गया था, उसे स्वीकार करने से पहले ही वापस ले लेना, दोनों के अलग-अलग कानूनी निहितार्थ नहीं हो सकते। दूसरे शब्दों में, नियुक्ति का प्रस्ताव जारी करना, जिसे स्वीकार किए जाने से पहले वापस ले लिया जाता है, उतना ही अच्छा या बुरा है जितना कि नियुक्ति आदेश जारी न करना। बाद में उल्लिखित मामले में, उनका आधिपत्य यह कहने में और भी अधिक स्पष्ट था, "प्रत्याशित रिक्तियों के विरुद्ध भर्ती के उद्देश्य से चयन की प्रक्रिया उस पद पर नियुक्त होने का अधिकार नहीं बनाती है जिसे परमादेश द्वारा लागू किया जा सकता है। " ऐसा निर्धारित करते समय, विद्वान न्यायाधीशों ने *ए.एन.डी. सिल्वा बनाम भारत संघ*[4] और सुभाष चंदर मारवोहा के मामले (सुप्रा) में अपने पहले के फैसलों पर भरोसा किया।

(5) हालाँकि, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री जे.के. सिब्बल ने तर्क दिया है कि सबसे पहले, *नीलिमा शांगला बनाम हरियाणा राज्य*[5] में अपने नवीनतम फैसले में, उपर्युक्त निर्णयों के अनुपात से भटक गया है, और दूसरी बात, कानून के एक अमूर्त प्रस्ताव के रूप में, एक कानूनी अधिकार उस व्यक्ति में निहित हो जाता है, जब एक नियोक्ता ने उसे किसी विशेष पद पर नियुक्त करने का

[4] ए आई आर (1962) एस सी 1130

[5] (1986) 3 एस एल आर 389

सचेत निर्णय लिया हो और भेजा हो। उस संबंध में उन्हें एक प्रस्ताव. विद्वान वकील के अनुसार, उस प्रस्ताव को स्वीकार करने से पहले ही वापस लेने से कोई फर्क नहीं पड़ता। इस प्रकार का अधिकार परमादेश रिट के माध्यम से लागू किया जा सकता है। अपने समर्पण के इस उत्तरार्ध को बनाए रखने के लिए, वह *आर्य चंद्र कुमार बनाम राज्य*,[6] *ई.एस.एम. केसटलाईन बनाम कर्नाटक राज्य*[7] डॉ. *चेतन मोत्रियम ओबराय बनाम महाराष्ट्र राज्य*,[8] *ए. माणिक राव बनाम निदेशक, रक्षा, धातुकर्म अनुसंधान प्रयोगशाला, हैदराबाद*[9] *और एस. पी. त्रिपाठी बनाम भारत संघ*[10] पर निर्भर करता है। हालाँकि, हम इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इन निर्णयों पर व्यक्तिगत रूप से किसी भी विस्तृत चर्चा की आवश्यकता महसूस नहीं करते हैं कि इनमें से किसी में भी मूल सिद्धांत नहीं है। रोशन लाई टंडन के मामले (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट द्वारा प्रतिपादित किया गया है कि प्रत्येक सरकारी सेवा की उत्पत्ति संविदात्मक है, और ऐसी हर आसानी में प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति का एक तत्व शामिल होता है, जिसे या तो नोटिस किया गया है या विज्ञापित किया गया है। हम यह देखने में भी असफल रहते हैं कि नियोक्ता द्वारा भेजा गया रोजगार का प्रस्ताव, जिसे स्वीकार किए जाने से पहले ही वापस ले लिया जाता है, रोजगार चाहने वाले व्यक्ति के पक्ष में एक अधिकार कैसे बनाता है। इन याचिकाकर्ताओं का यह मामला किसी भी तरह से नहीं है कि उनके पक्ष में जारी नियुक्ति के प्रस्तावों को वापस लेना किसी भी तरह से किसी क़ानून या वैधानिक नियमों का उल्लंघन था। इसलिए, हम श्री सिब्बल की दलील के इस हिस्से को अस्वीकार करते हैं।

(6) जहां तक एमएफ द्वारा नीलिमा शांगला के मामले (सुप्रा) पर निर्भरता का सवाल है। सिब्बल चिंतित हैं, हम पाते हैं कि इस फैसले और पहले के दो फैसलों के अनुपात के बीच कथित विरोधाभास है सुप्रीम कोर्ट, यानी, सुभाष चंदर मारवाह का मामला (सुप्रा) और जेमिंदर कुमार का मामला (सुप्रा) वास्तविक से अधिक काल्पनिक है। वास्तव में, सुभाष चंदर मारवाहा के मामले में अनुपात को

---

[6] 1973 1 एस एल आर 744

[7] 1980 2 एस एल आर 612

[8] 1982 3 एस एल आर 734

[9] 1985 1 एस एल आर 165

[10] 1986 1 एस एल आर 299

नीलिमा शांगला के मामले में उनके आधिपत्य द्वारा देखा गया था और इससे विचलित नहीं किया गया था। नीलिमा शांगला एक ऐसा मामला था जहां सेवा में 54 रिक्तियों को भरने के लिए हरियाणा सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) में चयन और नियुक्ति के लिए प्रतिस्पर्धी परीक्षा के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को क्रम संख्या 24 पर स्थान दिया गया था। हालाँकि, हरियाणा लोक सेवा आयोग ने केवल 26 उम्मीदवारों की सिफारिश करने का फैसला किया, और इनमें सामान्य श्रेणी के 17 उम्मीदवार शामिल थे, जिससे याचिकाकर्ता संबंधित था। अदालत के समक्ष याचिकाकर्ता का दावा था कि सामान्य वर्ग से योग्यता के क्रम में 32 उम्मीदवारों को नियुक्ति के लिए चुना जाना चाहिए था और "सेवा आयोग ने अवैध रूप से सरकार और उच्च न्यायालय से सभी सफल उम्मीदवारों के नाम छुपा लिए थे। उन्होंने तर्क दिया कि यदि आयोग द्वारा उपर्युक्त नियमों के नियम 8 और 10 का पालन किया गया होता तो उन्हें नियुक्ति के लिए चुना गया होता। इन नियमों के प्रासंगिक भाग इस प्रकार हैं:-

“8. (भाग ओ) किसी भी उम्मीदवार को परीक्षा में तब तक योग्य नहीं माना जाएगा जब तक कि वह मौखिक परीक्षा सहित सभी पेपरों में कुल मिलाकर कम से कम 55 प्रतिशत अंक प्राप्त नहीं कर लेता।

(भाग डी) उच्च न्यायालय रजिस्टर में दर्ज नामों की संख्या की कोई सीमा नहीं है, लेकिन आमतौर पर रिक्तियों को भरने के लिए अनुमान से अधिक नाम शामिल नहीं किए जाएंगे, जो दो के भीतर होने की संभावना है। एक परीक्षा के परिणामस्वरूप उम्मीदवारों के चयन की तारीख से वर्ष।”

'10(i) (भाग सी) परीक्षा का परिणाम हरियाणा सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा। "

(7) न्यायालय के समक्ष हरियाणा सरकार का रुख केवल यह था कि "वे अधिक उम्मीदवारों का चयन और नियुक्ति करने में असमर्थ थे क्योंकि लोक सेवा आयोग द्वारा केवल कुछ उम्मीदवारों के नाम उन्हें भेजे गए थे"। उनका मामला यह नहीं था कि वे सामान्य वर्ग से 17 से अधिक उम्मीदवारों को नियुक्त नहीं करना चाहते थे या विज्ञापित सभी रिक्तियों को भरने का इरादा नहीं रखते थे। वास्तव में, अभिलेखों से जो पता चला वह यह था कि लोक सेवा आयोग द्वारा सरकार को संक्षिप्त सूची

भेजने से पहले ही, उच्च न्यायालय ने सरकार को पहले ही सूचित कर दिया था कि और भी रिक्तियां हैं जिन्हें भरने की आवश्यकता है। सरकार को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी कि योग्य कई उम्मीदवारों के नाम आयोग द्वारा सरकार से छुपा लिए गए थे, इसलिए उन्होंने नए सिरे से प्रतियोगी परीक्षा आयोजित करने के लिए सरकार को पत्र लिखा। यह इन तथ्यों के प्रकाश में था, और नियमों की योजना की जांच करने के बाद, जो उनके आधिपत्य ने देखा:

"ऐसा प्रतीत होता है कि लोक सेवा आयोग का कर्तव्य उस लिखित परीक्षा को आयोजित करने, मौखिक परीक्षा आयोजित करने और लिखित और मौखिक परीक्षा के परिणामस्वरूप अर्हता प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों के बीच अंकों के अनुसार योग्यता के क्रम की व्यवस्था करने तक ही सीमित है। इसके बाद लोक सेवा आयोग को परिणाम राजपत्र में प्रकाशित करना होगा और जाहिर तौर पर परिणाम सरकार को उपलब्ध कराना होगा। लोक सेवा आयोग को योग्य उम्मीदवारों में से कोई और चयन करने की आवश्यकता नहीं है और इसलिए, किसी भी योग्य उम्मीदवारों के नाम को रोकने की उम्मीद नहीं है। लोक सेवा आयोग का कर्तव्य योग्यता के क्रम में व्यवस्थित योग्य उम्मीदवारों की पूरी सूची सरकार को उपलब्ध कराना है। इसके बाद सरकार को उसी क्रम में चयन करना होगा जिसमें उन्हें परीक्षा के परिणामस्वरूप आयोग द्वारा रखा गया है। फिर चयनित उम्मीदवारों के नाम उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए रजिस्टर में उसी क्रम में दर्ज किए जाने चाहिए और उस रजिस्टर में दर्ज नामों से नियुक्तियां भी उसी क्रम में की जानी चाहिए। बेशक, यह सरकार के लिए खुला है कि वह किसी वैध कारण से सभी रिक्तियों को न भरे। उदाहरण के लिए, सरकार और उच्च न्यायालय यह तय कर सकते हैं कि, हालांकि 55 प्रतिशत न्यूनतम योग्यता अंक हैं, उच्च मानकों के हित में, वे 60 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने वाले किसी भी व्यक्ति को नियुक्त नहीं करेंगे। हरियाणा राज्य बनाम सुभाष चंदर मारवाह मामले में ऐसी ही कुछ घटना घटी।"

इस निष्कर्ष और राज्य सरकार के रुख को ध्यान में रखते हुए कि वह याचिकाकर्ता का चयन और नियुक्ति करने में असमर्थ थी, क्योंकि लोक सेवा आयोग द्वारा उन्हें केवल कुछ नाम भेजे गए थे, अदालत ने सरकार को नाम शामिल करने का निर्देश दिया। हरियाणा न्यायिक सेवा में अधीनस्थ न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए चयनित उम्मीदवारों की 1984 की सूची में याचिकाकर्ता की

सूची और नियमों के नियम I-भाग डी के तहत बनाए गए उच्च न्यायालय रजिस्टर में शामिल करने के लिए इस न्यायालय को अग्रेषित करना। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को हरियाणा लोक सेवा आयोग द्वारा नियमों, विशेष रूप से नियम 8 और 10 के उल्लंघन के आलोक में राहत दी गई थी। अन्यथा न्यायालय ने कहा कि "यह सरकार के लिए खुला है कि वह किसी वैध कारण के लिए सभी रिक्तियों को न भरे। उदाहरण के लिए, सरकार और उच्च न्यायालय यह तय कर सकते हैं कि यद्यपि उच्च मानकों के हित में 55 प्रतिशत न्यूनतम योग्यता अंक है, वे 60 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने वाले किसी भी व्यक्ति को नियुक्त नहीं करेंगे। सुभाष चंदर मारवाहा के मामले में बिल्कुल यही हुआ था (सुप्रा)। उस मामले में किसी भी नियम का उल्लंघन शामिल नहीं था. मौजूदा मामलों में भी, जैसा कि पहले ही संकेत दिया जा चुका है, किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं बताया गया है। किसी भी नियम के उल्लंघन की तो बात ही क्या करें, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने अपने तर्कों के दौरान सेवा को नियंत्रित करने वाले किसी भी नियम का संदर्भ तक नहीं दिया है, जो कि स्वीकार किए जाते हैं, यानी, हरियाणा राज्य सहकारी भूमि के सेवा नियम डेवलपमेंट बैंक लिमिटेड, जिसे कर्मचारी सेवा नियम के नाम से जाना जाता है।

(8) उपरोक्त चर्चा के आलोक में, इस निर्णय के शुरुआती भाग में पूछे गए प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से नकारात्मक है, और हमारा मानना है कि एक बार नियुक्ति का प्रस्ताव इसकी स्वीकृति से पहले वापस ले लिया जाता है, तो कोई कानूनी अधिकार नहीं होता है भावी-नियुक्ति में निहित होता है जिसे परमादेश की रिट के माध्यम से लागू किया जा सकता है। इस प्रकार, ये याचिकाएं योग्यता से रहित हैं और खारिज कर दी जाती हैं लेकिन लागत के बारे में कोई आदेश नहीं दिया गया है।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और

आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

शिवदेव शर्मा

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

अम्बाला, हरियाणा